शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
ISSN 2320 – 0871
17 नवम्बर 2013

भारतीय संस्कृति का सामाजिक परिदृश्य

-डॉ. लक्ष्मण शिंदे
रीडर, शिक्षा अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर, म.प्र., भारत

शोध संक्षेप

समाज के विभिन्न घटकों- भाषा, मान्यताएं, उपासना, मूल्य, परम्पराएं, रीति-रिवाज आदि द्वारा किसी निश्चित समय, निश्चित क्षेत्र में विचारों और क्रियाओं द्वारा संस्कृति को व्यक्त किया जा सकता है। संस्कृति का अर्थ व्यापक और सारगर्भित है और इसकी व्याप्ति संपूर्ण जीवन तक है, जिसमें जीवन की लगभग समग्र गतिविधियां प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से समाविष्ट हो जाती है। हमारे हरेक कार्य व्यवहार में संस्कृति का प्रभाव विद्यमान रहता है। संस्कृति एक भावात्मक पर्यावरण है, जिसमें हम विचरण करते है। इसमें जीवन की हर परिस्थितियां, साधना, युगों-युगों के अनुभवों के आधार पर मानव द्वारा प्रतिस्थापित जीवनमूल्य निहित हैं, जो सामाजिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होते हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में इसी पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

संस्कृति एवं सभ्यता को समानार्थक भाव से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। सभ्यता का संबंध उन्नति से है, विकास से है तो संस्कृति का आचरण से। सभ्यता में जहां फैशनपरस्ती, दिखावा और जीवन का रूप परिलक्षित होता है, वहीं संस्कृति में धर्म, मूल्य, आचार-विचार, और संस्कारों की अनुभूति होती है। संस्कृति जीवन का सौंदर्य है।

इ.बी.टेलर के अनुसार "संस्कृति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान, विश्वास, कलाएं, रीति-रिवाज, रूढ़ियां, परंपराएं शामिल हैं जिसे मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित करता है।" संस्कृति मानव जीवन की वह क्रिया या स्थिति है, जिससे समूचा जीवन सज-संवर उठता है। संस्कृति सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता, समाज की अस्मिता का आधार है। संस्कृति परिवर्तित नहीं होती, कई सालों के अंतराल के बाद शायद किंचित परिमार्जन/संवर्धन दिखाई देता है इसलिए संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरण होता है।

समाज की अवधारणा

समाज की अवधारणा को जटिल समस्याओं से संबंधित अंतर्निहित प्रक्रियाओं के रूप में समझा जा सकता है। समाज एक स्थूल विचार या भावना नहीं बल्कि विचारों और भावनाओं का संयोग है। यह भी तथ्य है कि विभिन्न स्थानों पर विभिन्न कालों में मानवीय आवश्यकताओं के आधार पर जो संबंध बने हैं, संगठित रूप में समाज का निर्माण करते हैं। अन्तर्प्रक्रियात्मक परिस्थितियों, जैसे परिवार, संस्था, संगठन, समूह, धार्मिक संस्थाएं आदि राज्य सामाजिक पक्ष और मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते रहते हैं। इन सबके बीच शिक्षा के माध्यमों में आवश्यकतानुसार सापेक्ष और विकासोन्मुखी संबंध बनाने की प्रक्रिया निरंतर चलती

रहती है। सामाजिक संरचना की परिस्थितियां समय के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से परिवर्तित होती रही हैं। विभिन्न स्थानों, कालों और परिस्थितियों में समाज के विभिन्न अंगों में व्यापक अंतर दिखाई देता है।

हमारे देश के संदर्भ में सभ्याताओं की विविधता का आधार सार्वभौमिक रूप से संस्कृति ही रही है। संस्कृति के बिना समाज प्राणहीन है। समाज के व्यक्त रूप (परिवार समुदाय, संस्थाएं, संगठन आदि) में समन्वय स्थापित करना सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत आता है।

प्रत्येक व्यवस्था को समाजिक स्वरूप देने की आवश्यकता होती है क्योंकि-

- मानव स्वभाव से ही समाजिक प्राणी है।
- अस्तित्व के लिए समाज की आवश्यकता है।
- व्यक्तित्व के विकास के लिए समाज की आवश्यकता है।
- सभ्यता के विकास के लिए समाज की आवश्यकता है।
- संस्कृति के संरक्षण के लिए समाज की आवश्यकता है।
- आर्थिक प्रगति के लिए समाज की आवश्यकता है।
- मानव जाति का क्रम जारी रखने के लिए समाज की आवश्यकता है।
- शांति व्यवस्था के लिए समाज की आवश्यकता है आदि आदि।

समाज मानवीय व्यवहार, विचार और संबंधों को परखने और उन्हें सैद्धांतिक स्वीकृति प्रदान करने की प्रयोगशाला होती है, जिसमें सामाजिक मूल्यों की विशेष भूमिका होती है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बदलते मूल्यों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। विभिन्न प्रकार के आन्दोलन (सामाजिक/धार्मिक/राजनैतिक) सत्ता के प्रति विरोध/उत्तरदायित्व का अभाव आरामदेह जीवन जीने की चाहत सामाजिक उद्देश्यों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं। इन कारणों से सामाजिक मूल्य भी प्रभवित हो रहे हैं। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में सामाजिक नियंत्रण भी अत्यंत आवश्यक है। सामाजिक नियंत्रण भी अत्यंत आवश्यक है।

समता मूलक समाज में स्त्रियों और पुरूषों को गरीब, दलित व पिछड़ो सभी को समान अधिकार एवं अवसर प्रदान करनता है। सामाजिक नियंत्रण परम्पराओं के समायोजन के लिए क्योंकि समाज के मूल में सांस्कृतिक परम्पराओं समाज के मूल सांस्कृति परम्पराएं निहित है। स्वतंत्रता के बाद के भारतीय समाज में नए सामाजिक परिवर्तन हुए है जिसमें मुख्य रूप से सभ्यता और संस्कृति के स्वरूप पर आधुनिकीकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है। विज्ञान एवं तकनीक के इस दौर में समाज भी एक नवीन रचनात्मकता से कुछ स्तर तक प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाया है, जो सामाजिक वातावरण में सृजनात्मकता दृष्टिगत हो रही है, इन पर नियंत्रण की आवश्यकता है। 'स्व' पर नियंत्रण की आवश्यकता है। एक औपचारिकेत्तर सामाजिक वातावरण की आवश्यकता है।

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य

वर्तमान सामाजिक परिदृश्य एक नवीन सामाजिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। धर्म और शिक्षा का सारगर्भित स्वरूप उदीयमान भारतीय समाज में अत्यंत आवश्यक है। विश्वास और सत्यता मानवीय जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करते हैं। एक आदर्शवादी वातावरण में व्यक्तित्व का परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करते हैं।

नवीन सामाजिक परिदृश्य में प्रजातंत्र की शिक्षा में समन्वय स्थापित करना भी आवश्यक है, जो आधुनिक समाज मे जनतंत्र और संविधान के प्रति आस्था प्रगाढ़ करने में सहायक होगा। आज समूचा विश्व वैश्वीकरण का किसी न किसी रूप में पक्षधर है- हम तो ''वसुधैव कुटुम्बकम' की संभावनाओं का अलख जगाने वाले कहलाते हैं। अतः अंतर्राष्ट्रीय एकता का सामाजिकीकरण अर्थात् सामान्यीकरण भी बड़े परिवर्तन की राह देख रहा है। आर्थिक परिस्थितियां अनुकूल/प्रतिकूल होती रहती हैं। इसका सामाजिक प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

समाज में महिलाओं की स्थिति - सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक प्रथाएं, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम, सरकारी दृष्टिकोण नामांकन, अशिक्षा और अपर्याप्त शिक्षण संस्थान हमारे अधूरे प्रयासों को पूरा करने की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार ''साहित्य और समाज के संबंधों को समझने के लिए व्यक्तिगत मानक और लोकमानस दोनों पर विचार होना चाहिए। जो एकांत जीवन व्यतीत कर रहा है, उसे मानवीय भावना की क्या आवश्यता है। अंत में प्रेम, आदर आदि मानवीय गुण नही आ सकते। मानवीय गुणों की सृष्टि समाज में ही होती है और अंततः मानवीय भावनाएं भी साहित्य की उपलब्धि है।''

साहित्य व्यक्तिगत प्रयत्न के परिणाम के रूप में उद्धृत किया जाता रहा है। व्यक्ति समाज के लिए और समाज व्यक्ति के लिए। इन दोनों विचारधाराओं में संतुलन होना चाहिए। सामाजिक नियमों का प्रतिपादन किए बिना व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता और व्यक्ति की महत्ता को मिटाकर समाज भी समृद्ध नहीं हो सकता। राम, कृष्ण, गांधी, विवेकानंद, प्लेटो, अरस्तु, न्यूटन जैसे व्यक्तियों को मिटाकर क्या समाज विकास कर सकता है ? मानवता के कल्याण के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण होना चाहिए जिसमें इन दोनों विचारधाराओं का पूर्ण विकास हो सके। किसी भी हालत में आत्माभिव्यक्ति का दमन नहीं होना चाहिए।

विचारों के संघर्ष से ही नवीन विचार पल्लवित होते हैं और सामाजिक परिवर्तनों को स्वीकार किया जाता है। मनुष्य ने धीरे-धीरे प्रकृति पर विजय प्राप्त की, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, अपितु- एक प्रकार से विज्ञान का जयघोष हुआ। मानव कल्याण की भावना के साथ विज्ञान के आविष्कारों को आत्मसात करना होगा। विज्ञान का उद्देश्य भी समाज को सुसंस्कृत और सभ्य बनाना होना चाहिए। यह भी तथ्य है कि दरिद्रता और वर्ग-विषमता के वातावरण में राष्ट्र निर्माण कैसे हो सकता है ? विज्ञान का जो विकास मानव ने स्वयं किया है, उसका लाभ उठाकर इस विषमता को दूर किया जा सकता है। ऐसा करने से 'समृद्धि' व 'समता' के युग की कल्पना की जा सकती है। समता से यहां आशय- हर व्यक्ति के लिए ऐसे समान और अनुकूल वातावरण का निर्माण करना जिसमें वह आनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक क्षमता का पूर्णतया विकास कर सके। उसे अपना सर्वांगीण विकास करने मे किसी प्रकार की बाधा न हो। राष्ट्र का निर्माण ऐसा हो जिसमें पापी-से-पापी

का भी सुधार हो सके। दरिद्रता का अभिशाप दूर कर हम लाखों करोड़ों व्यक्तियों को सुसंस्कृत और सभ्य बना सकते हैं। इससे हमारा राष्ट्र आगे बढ़ेगा।

पूर्व में विकास की अपनी परम्परा रही है, किन्तु पश्चिम ने जो कुछ किया है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कोई भी सजग चिंतक पश्चिम की देन को अस्वीकार नहीं कर सकता। विज्ञान के क्षेत्र में, लेखन और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए पश्चिम के लोगों का संघर्ष भी मानवता के इतिहास में अभूतपूर्व है। उससे मानव चेतना का प्रसार हुआ है। नए मूल्यों की सृष्टि हुई है। भारतीय चिंतन प्रवृत्ति भी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी। संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा पत्र को देखने से पता चलता है कि मानव-समाज आरंभिक युगों से कितना आगे बढ़ा है।

आदिकाल से ही हमारे देश की बहुत ऊँची संस्कृति रही है। हमारी संस्कृति में वे सभी मौजूद हैं जिससे हम नवयुग का निर्माण कर सकते हैं। हमारी संस्कृति का सबसे बड़ा तत्व विभिन्न जीवन प्रणालियों में एकता और समन्वय स्थापित करना है। भारतीय संस्कृति की विशेषता नैतिक व्यवस्था की स्थापना है। कर्मफल की कामना न रखते हुए शुभ कार्य की ओर बढ़ते हंै। मानवीय कर्म को सहजता से स्वीकार करना प्रमुख गुण है। जैसे चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (आध्यात्मिक, बौद्धिक मुक्ति)। हमारी संस्कृति का एक बड़ा संदेश है आचरण की शुद्धता। सुख-दुःख का ध्यान रखना भी अत्यंत आवश्यक है। वरन् समूचा मानव समाज ही नष्ट हो जाएगा। यही सामाजिकता और मानवता का मूल मंत्र है। यह मूल मंत्र भारतीय मनीषियों की विश्व को देन है।